सहज प्रवाह
– राजकुमार, द्रोणगिरि

राजकुमार शास्त्री द्वारा लिखित साहित्य
₹ 10/-
कर्म विचारे कौन?
₹ 20/-
प्रेरणा
₹ 20/-
₹ 10/-
विविधा
₹ 20/-
भोलाराम
₹ 25/-
बढ़े सो पावे
अनुपलब्ध
शाश्वत आराधना
₹ 25/-
दुखते दोहे
₹ 5/-
जो कुछ कहा सच कहा
₹ 20/-
₹ 15/-
मध्यांतर
₹ 30/-
₹ 20/-
पापा का बचपन
₹ 25/-

समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट का 27वाँ पुष्प

सहज प्रवाह

रचनाकार

राजकुमार, द्रोणगिरि

प्रकाशक

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर (राज.)

प्रथम संस्करण : **2 हजार प्रतियाँ**
(23.06.2019)
श्री वासुपूज्य भगवान गर्भकल्याणक दिवस के प्रसंग पर

साहित्य प्रकाशन सहयोग राशि : **5/-**

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर
मो. 9928517346

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	मंगल पाठ	7
2.	तत्त्वविचार	10
3.	बारह-भावना	12
4.	मंगल-भावना	15
5.	स्वात्मालोचन	20
6.	विनयांजलि	29
7.	निज-दोष-दर्शन	33
8.	आतमराम आतमराम...	39
9.	जिनवाणी स्तुति	40
10.	महाभाग्य	41
11.	आकुलता का है क्या काम ?	43
12.	संत स्वभाव निराला	44
13.	ज्ञान स्वभाव निराला	47

- प्रकाशकीय -

बाल/किशोर/युवा एवं सामान्य वर्ग के पढ़ने योग्य सरल भाषा शैली में साहित्य का प्रकाशन करना 'समर्पण' का मुख्य उद्देश्य रहा है। इस भावना से समर्पण द्वारा अभी तक 26 पुष्प प्रकाशित किए जा चुके हैं, जिनमें कुछ एक पुस्तकों के तो अनेक संस्करण भी निकल चुके हैं।

समर्पण द्वारा प्रकाशित साहित्य 'जो चाहो ले जाओ - जो चाहे दे जाओ' के आधार पर सदैव उपलब्ध रहता है। साहित्य प्रकाशन के लिए सुधी पाठकों के द्वारा उदार सहयोग सदैव प्राप्त होता रहता है, जिससे हम साहित्य प्रकाशित करते रहे हैं। पुष्प क्रमांक 27 के रूप में **'सहज प्रवाह'** पुस्तिका आपके हाथों में प्रस्तुत की जा रही है। इस पुस्तिका में राजकुमार शास्त्री द्वारा

रचित अनेक काव्यों का संकलन किया गया है, जिनमें 'निज दोष दर्शन, स्वात्मालोचन' एवं अन्य कुछ कविताएँ प्रथम बार ही प्रकाशित की जा रही हैं। आशा है पाठक सदा की भांति इस पुस्तिका का भी लाभ लेंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन्होंने अर्थ सहयोग प्रदान किया है, उन्हें धन्यवाद एवं पुस्तक के आकर्षक मुद्रण हेतु श्री दिनेश जैन देशना कम्प्यूटर जयपुर को भी साधुवाद देते हैं।

निवेदक – **समर्पण** (9414103492)

साहित्य प्रकाशन हेतु प्राप्त सहयोग

1.	श्री विवेक जैन परिवार, बहरीन	15000/-
2.	श्री अरुण जैन परिवार, दिल्ली	5000/-
3.	श्री अरुण जैन परिवार, पुणे	2000/-

- अपनी बात -

स्वाध्याय के पाँच भेदों में आम्नाय नाम का स्वाध्याय सबको ही विशेष रूप से प्रौढ़/वृद्ध वर्ग को प्रिय रहा है।

जिस कालखंड में माताएँ-बहनें अधिकांशत: अशिक्षित रहती थीं, पुरुष वर्ग भी अधिक शिक्षित नहीं होते थे वह छहढाला, भक्तामर स्तोत्र, आलोचना पाठ, वैराग्य भावना, बारह भावना इत्यादि पाठों के माध्यम से अपने परिणामों में निर्मलता लाते थे।

मैंने जो कुछ काव्यों की रचना की है, उनमें कुछ काव्य पाठ करने योग्य मुझे लगने से मैंने यहाँ पर उनको संकलित किया है। जिनमें 'मंगल पाठ' भक्ति परक है तो 'स्वात्मालोचन' और 'निज दोष दर्शन' यह अपने दोषों

और अपनी सामर्थ्य को जानने के योग्य पाठ हैं, जिन्हें कुछ पाठकों ने 'आधुनिक आलोचना पाठ' कह कर प्रशंसा भी की है।

अन्य अनेक छोटे-छोटे काव्य हैं, जिन्हें पाठक पढ़ना चाहेंगे, याद करना चाहेंगे इसलिए यह हमारी भावनाओं का जो सहज प्रवाह है वह इस 'सहज प्रवाह' पुस्तिका में प्रस्तुत है। आशा है पाठक लाभान्वित होंगे एवं त्रुटियों की ओर हमें इंगित कर अनुग्रहीत करेंगे।

धन्यवाद।

23.6.19 **राजकुमार शास्त्री, द्रोणगिरि**

तन-मन-धन सब भिन्न हैं, भिन्न शुभाशुभ राग।
समयसार मैं ज्ञानमय, निज से करूँ अनुराग।।

मंगल पाठ

('हरिगीतिका' छंद)

दोष अष्टादश रहित, सर्वज्ञ श्री अरहन्त हैं।
सर्वोदयी संदेश जिनका, वीर्य-सुख भी अनन्त हैं।।1।।

विधि अष्टविरहित ज्ञानतनयुत, तनरहित जो सिद्ध हैं।
गुण नंतमय प्रभु शोभते, पर अष्ट गुण ही प्रसिद्ध हैं।।2।।

दशधर्म द्वादश तप धरें, आचार पंच सु निरत हैं।
षडावश्यक गुप्ति त्रय जो, पालते आचार्य हैं।।3।।

अंग एकादश चतुर्दश, पूर्व का स्वाध्याय है।
पठन पाठन रत रहें, वे उपाध्याय महान हैं।।4।।

विषय-आशा रहित हैं जो, सर्व संग विमुक्त हैं।
निज ज्ञानध्यान करें सदा, लौकिक क्रिया से मुक्त हैं।।5।।

स्याद्वादमय है कथन जिसमें, आत्मतत्त्व प्रकाशिनी।
मुक्ति पथ दिग्दर्शिका जो, भव्य भव-भय नाशनी।।6।।

त्रयलोक में कृत्रिम-अकृत्रिम, शोभते जिनभवन हैं।
हैं मोह के नाशक निलय, सादर उन्हें मम नमन है।।7।।

जिनवर विरह को दूर करती, प्रतिमा जिनवरदेव की।
दृगमोह क्षय हो उस घड़ी, जिस घड़ी जिनवर सेव की।।8।।

वस्तु स्वभाव ही धर्म है, अरु रतनत्रय भी धर्म है।
दशलाक्षणी जो धर्म धारें, नष्ट होते कर्म हैं।।9।।

पंचपरमेष्ठी, जिनालय, जिनवचन, जिनबिम्ब हैं।
जिनधर्म सह सबको नमन, निज आत्म के प्रतिबिंब हैं।।10।।

जिनके गुणों का स्मरण, सब पाप मल को क्षय करें।
नवदेव हैं यह पूज्य सब, जो जगत में मंगल करें।।11।।

तत्त्वविचार

('वीर' छंद)

दुर्लभ नर भव पाकर चेतन किया न तूने तत्त्व विचार।
तू है कौन ? कहाँ से आया ? कैसे चलता यह व्यापार ?
गोरा, काला, शरीर मिला क्यों ? क्यों पाया ऐसा परिवार।
कोई सुन्दर, कोई असुन्दर, दुःख-सुख का ना पारावार।।

सभी चाहते नित प्रति सुख हैं, पर सुख को वे नहीं पाते।
अजर-अमर मैं रहूँ सदा ही, पर इक क्षण में मर जाते।

मोही होकर जिनको पोषे, वे देते हैं साथ नहीं।
करे परिश्रम दिवस–निशि तू, पर लगता कुछ हाथ नहीं।।
यश चाहे पर अपयश मिलता, स्वास्थ चहे पर होवे रोग।
माल भरा है गोदामों में, कर नहीं पावे उनका भोग।
तेरे करने से कुछ हो तो, करले तू इक काला बाल।
बाल भी काला कर ना पाये, अब तो बदलो अपनी चाल।।
होते हुए काम को जानो, कुछ भी नहीं तेरे आधीन।
तेरे वश से कुछ नहीं होता, होता है सब कर्माधीन।
तू है चेतन, तन है अचेतन, है स्वतंत्र सारा परिवार।
हो स्वतंत्र परिणमन सभी का, कर लो चेतन तत्त्व विचार।।

बारह–भावना

('दोहा' छंद)

तन–धन भोग अनित्य हैं, इक आतम ही नित्य।
निज आतम अवलम्ब से, सुख पाओगे नित्य।।1।।

मंत्र–तंत्र न शरण है, शरण है आतमराम।
निज आतम को भूलकर, भ्रमता जगत तमाम।।2।।

राग–द्वेष–अज्ञान ही, हैं अपना संसार।
यह ही दुःख के हेतु हैं, कर इनका संहार।।3।।

सुख-दुःख भोगे एक ही, एक ही हँसवे रोय।
जन्मे मरे सु एकला, साथी सगा न कोय।।4।।
मात-पिता भाई-बहिन, कोई न अपना होय।
पर को अपना मानकर, मूरख व्यर्थ ही रोय।।5।।
यह तन मल की खान है, और अशुचि है राग।
राग आग को त्याग कर, निज से कर अनुराग।।6।।
कर्मों का हो आगमन, जब हो राग अरु द्वेष।
इनको होवे नाश जब, मिटता भव का क्लेश।।7।।
निज घर में ही नित रहो, कर्मागम रुक जाये।
निजानंद जब हो प्रकट, तब संवर कहलाय।।8।।

निजानंद की प्रचुरता, शुद्धि बढ़ती जाय।
संचित पूरब जे करम, क्रमशः झड़ते जाय।।9।।
निज चेतन चिल्लोक है, बाहर हैं त्रय लोक।
अमिट अनादि मैं सदा, फिर काहे का शोक।।10।।
ज्ञायक हूँ यह जानना, सच में दुर्लभ नाहिं।
पर का ज्ञाता मानकर, भटक रहा जग माहिं।।11।।
वस्तु स्वभाव ही धर्म है, जो समझे वह पाय।
ज्ञानानंद में लीन हो, निश्चित शिवपुर जाय।।12।।
ये ही बारह भावना, भाओ दिन अरु रात।
करो 'समर्पण' अहं का, मुक्ति मिलेगी भ्रात।।13।।

मंगल–भावना

('मानव' छन्द)

प्रभु ऐसा दिन कब आये, जिन वच ही मन को भाये।
निज शुद्ध स्वरूप निरखकर, निर्ग्रन्थ स्वरूप सुहाये।।

विकथाओं से मन भागे, आतमहित की रुचि जागे।
हो करुणा भाव सदा ही, वच झूठ न कहूँ कदापि।।
पर वस्तु को न चाहूँ, पर वनिता पर न लुभाऊँ।
भोगों की सामग्री को, धन–धान्य–नाम–पद–यश को।।

न मेरा मन ललचाये, प्रभु ऐसा दिन कब आये।
निज शुद्ध स्वरूप निरखकर, निर्ग्रन्थ स्वरूप सुहाये।।1।।
प्रतिकूल प्रसंगों में भी, मैं क्रोध करूँ न स्वामी।
निज परिणामों का ही फल, मानूँ हे अन्तर्यामी।।
मैं धन-पद-यश को पाकर, नहीं चलूँ कभी इठला कर।
निज कार्य सिद्धि के कारण, छल करूँ न जो दुख कारक।।
आशा तृष्णा न भाये, प्रभु ऐसा दिन कब आये।
निज शुद्ध स्वरूप निरखकर, निर्ग्रन्थ स्वरूप सुहाये।।2।।
पर निंदा-चुगली-गाली, मैं कहूँ नहीं दुखकारी।
पर की समृद्धि को लख, मैं करूँ न हा-हा कारी।।

केवल प्रशस्ति–यश पाने, जिन–वच का करूँ न अपव्यय।
अरु पद–उपाधियाँ पाने, जड़ धन का करूँ न विनिमय।।
हो निजहित की ही चाहत, ऐसा दिन प्रभु कब आये।
निज शुद्ध स्वरूप निरखकर, निर्ग्रन्थ स्वरूप सुहाये।।3।।
न जिन वच में हो शंका, न विषयों की अभिलाषा।
न रोगादिक में ग्लानि, न हो कुदेव से आशा।।
धर्मी के अवगुण ढांकूँ, जिनधर्म में दृढ़ता लाऊँ।
वात्सल्य हो साधर्मी से, जिनधर्म को मैं फैलाऊँ।।
जब घर मंदिर बन जाये, प्रभु ऐसा दिन कब आये।
निज शुद्ध स्वरूप निरखकर, निर्ग्रन्थ स्वरूप सुहाये।।4।।

हों धर्मायतन जहाँ भी, न मैं अधिकार जमाऊँ।
बस हो प्रभावना निर्मल, मैं यही भावना भाऊँ।।
हैं जिन मंदिर जिनवर के, जिनमें सहयोग सभी का।
हो तत्त्वज्ञान की चर्चा, पायें मारग मुक्ति का।।
जिन मंदिर सबको भाये, प्रभु ऐसा दिन कब आये।
निज शुद्ध स्वरूप निरखकर, निर्ग्रन्थ स्वरूप सुहाये।।5।।
हो धर्म की घर-घर चर्चा, जिनमंदिर में जिन अर्चा।
हों निशि भोजन के त्यागी, आपस में सब अनुरागी।।
सबके ही गुण सब देखें, सब आतम सिद्ध स्वरूपी।
मैं एक शुद्ध हूँ ज्ञायक, निर्मम-निर्मल-अनरूपी।।

सबको शुद्धातम भाये, प्रभु ऐसा दिन कब आये।
निज शुद्ध स्वरूप निरखकर, निर्ग्रन्थ स्वरूप सुहाये।।6।।

होवे निज में अपनापन, अरु मिटे दुखद कर्तापन।
मिथ्यामति सब मिट जाये, निज का अनुभव हो जाये।।
लागे आतम सुन्दरतम, परिग्रह की महिमा हो कम।
विषयाशा को सब तजकर, निर्ग्रंथ स्वरूप को धरकर।।
आनंद अतीन्द्रिय आये, प्रभु ऐसा दिन कब आये।
निज शुद्ध स्वरूप निरखकर, निर्ग्रन्थ स्वरूप सुहाये।।7।।

लौकिक गुण देखें सभी, धर्म न देखे कोय।
धर्महीन हो कोई भी, अंत में वह तो रोय।।

स्वात्मालोचन

('हरिगीतिका' छन्द)

गतराग अरु सर्वज्ञ हैं, घनघाति कर्म विमुक्त हैं।
सर्वोदयी संदेश 'जिन' का, चरण में हम विनत हैं।।
वसु कर्म नष्ट हुए हैं जिनके, हुआ सुक्ख अपार है।
उन ध्रुव-अचल श्री सिद्ध-प्रभु को, वंदना शतबार है।।1।।
विषय-आशा-रहित हैं, निज-आत्म में जो निरत हैं।
वे सूरि-पाठक-साधु सब, आरंभ-परिग्रह-रहित हैं।।

ऋषभादि 'तीर्थंकर' प्रभु को, भाव से वंदन करूँ।
निर्दोष होने अति-विनय से, दोष मैं निज उच्चरूँ।।2।।
'अज्ञता' मेरी प्रभो! मैं क्या कहूँ? कैसे कहूँ?
कर्तृत्व और ममत्व के वश, घोर दुख क्यों ना सहूँ?
न्याय-नीति-जिन वचन की, बात मैं मुख से करूँ।
पर मैं स्वयं सन्मार्ग पर, चलता नहीं कैसे कहूँ?।।3।।
परवस्तु को 'निज-वस्तु' कहकर, सदा अतिक्रम ही किया।
अन्य से भरपूर लेकर, कण नहीं पर को दिया।।
निर्माल्य-भक्षण मैं किया प्रभु, जो महा-अघरूप है।
नर-नारि-तन पर हुआ मोहित, जो महा दुखकूप है।।4।।

स्वाद-लोलुप हो प्रभो! मैं, भक्ष्याभक्ष्य सभी चखा।
विषय-लोभी ही रहा मैं, नहीं संयम धर सका।।
मैं पिता होकर प्रभो, ना तनय संस्कारित किये।
पुत्र होकर जन्म-दाता, को न सेवा-फल दिये।।5।।
'धर्म पत्नी' बन प्रभो, मैं धर्म से ही च्युत किया।
मैं दुराचारी रहा, अर्धांगिनी चाही सिया।।
परिजनों के मध्य रहकर, न किया सत्कर्म को।
अधिकार ही चाहा सदा, समझा नहीं कर्त्तव्य को।।6।।
जग में बड़प्पन को दिखाने, दान मैं देता रहा।
पद-प्रतिष्ठा-यश मिले, दिन रात चिंतन में रहा।।

इसके लिए निर्लज्ज हो, गुणगान सबके ही किये।
लोभ में बनकर 'सरल', कटु वचन भी सबके सहे।।7।।
अपशब्द कहकर मैं सभी को, कष्ट ही देता रहा।
क्रोध-मद में अंध हो, अपमान ही करता रहा।।
'कर्त्ता नहीं, सब जीव ज्ञाता', सबको समझाता फिरूँ।
वक्तृत्व के कर्त्तृत्व में, उन्नत वदन जग में रहूँ।।8।।
गुरु-नाम का 'अपलाप' कर, निज-नाम को ऊँचा किया।
कर्तृत्व था जो अन्य का, उसको कहा 'मैंने किया'।।
मैं पाप करता रात-दिन पर, पुण्य फल चाहूँ सदा।
समता-समर्पण-समन्वय के, भाव न होते कदा।।9।।

विषय-भोगों की कथा ही, मैं सदा सुनता रहा।
निज आत्मा की वार्त्ता को, मैंने नहीं सुनना चहा।।
जो दोष अष्टादश-सहित अरु, रूप विविध धरे अरे!
मोहित-मती मेरी रही, जो पूज्य पद उनको कहे।।10।।
जिनदेव अरु जिनधर्म पाकर, आत्मा जाना नहीं।
'मैं स्वयं हूँ सिद्ध-सम', यह कभी माना नहीं।।
स्व-पर-हितकर जिन-वचन का, नहीं सेवन मैं किया।
मोह-नाशक जिन-वचन पा, मोह संवर्धन किया।।11।।
नियत अरु व्यवहार-नय में, एकांत का ही पक्ष ले।
एक को करके ग्रहण, मैं तजा दूजा दोष दे।।

द्विविध वस्तु है नहीं, बस कथन द्विविध प्रकार है।
जिनवच-रहस समझा नहीं, नरदेह की यह हार है।।12।।
व्यवहार-नय के कथन से, कर्त्तृत्व का पोषण किया।
स्वच्छंद होकर स्वमति से, परमार्थ को दूषित किया।।
तन में सदा एकत्व कर, पर में किया ममकार है।
निज-विभव भूला हे प्रभो! मैं सहा दुक्ख अपार है।।13।।
मैं शुभाशुभ-भावमय, माना यही मदमस्त हो।
सत्यपथ कैसे दिखे? जब ज्ञान-रवि ही अस्त हो।।
देव-गुरु-गुणगान कर, कहते सदा 'शुद्धात्मा'।
जिनवचन सुन, अनसुना कीना, रहा मैं बहिरात्मा।।14।।

सद्भाग्य जागा आज मेरा, देव! जिन दर्शन किये।
कर्ण मेरे हुए पावन, जिन-वचन अमृत पिये।।
जिनदेव कहते दिव्यध्वनि में, तुम शुभाशुभ-मुक्त हो।
रागी नहीं द्वेषी नहीं, न प्रमत्त अरु अप्रमत्त हो।।15।।
परमार्थ से तुम शुद्ध हो, अरु एक-दर्शन ज्ञानमय।
निज-आत्मा को जान-मानो, रमो निज में हो अभय।।
रस-रूप-गंध-रहित सदा, पर्याय से भी पार हो।
तुम हो अनूपम विश्व में, तुम मुक्तिश्री हिय हार हो।।16।।
हम हैं सभी शुद्धात्मा, कोई नहीं छोटा-बड़ा।
जो सिद्ध-सम निज को न देखे, वह भवोदधि में पड़ा।।

मैं सदा ज्ञायक-स्वभावी, अरु अनादि-अनंत हूँ।
मैं दीन-हीन नहीं प्रभो! मैं मुक्तिलक्ष्मी कंत हूँ।।17।।
वर्णादि से विरहित सदा, मेरा अहो चिद्रूप है।
निष्कर्म-निर्मम और निर्मल, ही सदा मम रूप है।।
निज-चतुष्टय न तजूँ, परसंग मैं करता नहीं।
अस्तित्व गुण के कारणे, मैं तो कभी मरता नहीं।।18।।
पर्याय-दृष्टि अब तजूँ, मैं लखूँ शुद्ध-स्वभाव को।
निज आत्मा में 'अहं' करके, छोड़ दूँ परभाव को।।
पर्याय में एकत्व ही, सबसे बड़ा मम दोष है।
शुद्धनय से सदा देखूँ, आत्मा निर्दोष है।।19।।

अब चलूँ मैं वीर-पथ पर, वीर बनने के लिए।
छोड़ दूँ दुष्कर्म सारे, अज्ञता में जो किये।।
निज-आत्मा को जानकर, निज में रमूँगा मैं प्रभो!
अज्ञता तज, विज्ञ हो, सर्वज्ञ पद पाऊँ विभो।।20।।

वीतराग दर्शन बिना, धन-पद-यश सब व्यर्थ।
चुनाविधर्मी हमसफर, कितना हुआ अनर्थ।।
जैनधर्म बिन स्वर्गसम, भी यदि वैभव होय।
इन्द्र सरीखा वर मिले, मत लो धर्म को खोय।।
संघ लगे संघर्ष में, दल हैं दल-दल मांहि।
समिति समाय अन्य को, कैसे भी निज मांहि।।

विनयांजलि

(तर्ज– जिया कब तक उलझेगा संकल्प विकल्पों में)

चहुँगति की गलियों में, प्रभु कब से भटक रहा।
जग की रंग रलियों में, निज निधि को भूल रहा।।
मैं काल अनंत अरे, पशु गति में रह आया।
वध–बंधन–छेदन के, बहु दुख मैं सह आया।।
मैं भार वहन करते, अगणित दुःख पाये हैं।
सबलों ने मारा मुझे, बहु कष्ट उठाये हैं।।
छल कर करके मैंने, बस अब तक कष्ट सहा।। चहुँगति।।

आकुलता में मरकर, मैं नरक गति जन्मा।
भू के स्पर्शन से, मैं प्रभु बहुविध तड़फा।।
जहाँ भूख-प्यास भारी, शीतोष्ण भयंकर है।
देखूँ मैं चहुं दिशि में, नहीं कोई हितंकर है।।
हर क्षण बस चिल्लाऊँ, दुख नाहीं जाये सहा।। चहुँगति।।
जब नरतन को धारा, गर्भादिक दुख सहे।
जन्में जब इस भू पर, तब अगणित कष्ट लहे।।
धन-पद-यश की चाहत, बस आकुलता मय है।
कर्मोदय में भूला, निज निधि जो सुखमय है।।
दुख पाये जीवन भर, मुझसे न जाये कहा।। चहुँगति।।

सुर गति में भोगों की, मदिरा पी मस्त रहा।
विषयों की तृष्णा में, हे प्रभु मैं त्रस्त रहा।।
निज-पर के ज्ञान बिना, सुर वैभव दुखमय है।
वह सुख न कभी पाता, जो तन में तन्मय है।।
मैं मोह सहित रहकर, सुर गति में दुख लहा।। चहुँगति।।
अब तक जीवन बीता, मिथ्यात्व अंधेरे में।
तन-धन को निज माना, संसार के फेरे में।।
जिनवर-जिनश्रुत-जिनगुरु, से अब तक दूर रहा।
मिथ्या पथ पर चलकर ही, अब तक कष्ट सहा।।
नव देव मिले अब तो, दुःखों का अंत अहा।। चहुँगति।।

मंगलमय धर्म मिला, मंगल-शांति पाने।
जिनवर के पंथ चलूँ, खुद जिनवर बन जाने।।
त्रिभुवन में इक सुन्दर, परिपूर्ण रूप मेरा।
जिनसम निज रूप लखो, मिटे गतियों का फेरा।।
मैं परम पारिणामिक, स्वयमेव ही देव अहा।
मैं तो अनंत सुखमय, जिनदेव ने सदा कहा।।

अपरिग्रह का उपदेश दें, परिग्रह की है आस।
विषय-त्याग की बात कर, हैं विषयों के दास।।
अजर-अमर है आत्मा, नहिं है उसका नाम।
भाषण में यह सब कहें, पर है नाम से काम।।

निज–दोष–दर्शन

('दोहा' छन्द)

जिनवर–जिनवच–जिनगुरु, अरु तीर्थंकर–नाम।
भक्ति–भाव उर–धारकर, सादर करूँ प्रणाम।।1।।
हे प्रभु ! तुम निर्दोष हो, ज्ञान–दर्श–सुख पूर्ण।
तव पथ पर मैं भी चलूँ, करूँ दोष को चूर्ण।।2।।

('वीर' छन्द)

अनादिकाल से चतुर्गति में, मोह–राग–वश भ्रमण किये।
एकेंद्रिय से पंचेन्द्रिय–तन, धरकर विध–विध कष्ट सहे।।

जिन-वच में ही शंका धरकर, व्यर्थ विकल्प किए नाना।
हो स्वच्छंद पापों में रत हो, नरक-निगोद पड़ा जाना।।
जीवन-मरण, लाभ अरु हानि, हो जिस विधि प्रभु ने जाना।
पर-परिवर्तन करना चाहा, 'क्रमबद्ध' को ना माना।।
नरतन धरकर अज्ञदशा में, मैंने बहु-अपराध किये।
बचपन बीता खेलकूद में, नहीं ज्ञान-संस्कार लिये।।
यौवन पाकर हो मतवाला, विषयों में ही मस्त रहा।
धन-पद-यश पाने को उद्यत, आतम-हित में सुस्त रहा।।
वीतराग को नमस्कार कर, राग-सहित पूजे मैंने।
जैनाचार को दे तिलांजलि, भ्रष्टाचार किया मैंने।।

चल–चित्रों के विकट–जाल, अरु धारावाहिक में उलझा।
नायक–खलनायक सब नाटक, सत्य–स्वरूप नहीं समझा।।
उनको निज–आदर्श बनाकर, राग–द्वेष किए मैंने।
नाच–गान अरु फैशन में फँस, जीवन व्यर्थ किया मैंने।।

सर्च किया 'गूगल' पर 'सब कुछ', जिनवाणी को ना देखा।
मोबाइल से करी मित्रता, किया न भावों का लेखा।।
बाजारों के भावों में फँस, निज–स्वभाव को ना जाना।
लोभ के वश हो योग्यायोग्य–वणिज कीना है मनमाना।।

तत्त्वज्ञान के ही अभाव में, मंत्र–तंत्र में उलझ गया।
सुख–दुःख मिलता निज–कर्मों से, जिन–वच को मैं भूल गया।।

राष्ट्र-समाज-अहित करके भी, निज-हित ही साधा मैंने।
ध्वनि-जल-वायु प्रदूषित करके, जीवों को मारा मैंने।।
नल के जल को छाना मैंने, रोगाणु से बचने को।
'जीवाणी' ना विधि से कीनी, मरें जीव तो मरने दो।।
व्यर्थ चलाकर पंखा-कूलर, जीवों का बहुघात किया।
ए.सी.-फ्रिज अरु हीटर-गीजर, चला-चला कर पाप लिया।।
गैस-जलाकर, बातों में लग, व्यर्थ ही आग जलाई है।
मानों निज-हाथों से मैंने, सुख में आग लगाई है।।
जमीकंद अरु मद्य-मधु का, भी सेवन मैंने कीना।
पंच-इंद्रिय के सुख पाने को, जीवन 'त्रस' का भी छीना।।

बिन छाने जल से मशीन में, मैंने कपड़े धोये हैं।
होटल में भोजन कर-करके, बीज पाप के बोये हैं।।
द्विदल-सेवन, उपवन-भोजन, करके 'त्रस' का घात किया।
चर्म, सिल्क अरु चर्बी-निर्मित, वस्तु का उपभोग किया।।
निशि में भोजन-पूजन-फेरे, किये कराये हैं मैंने।
आतिशबाजी अरु डी.जे. से, सुख से नहीं दिया जीने।।
बहु प्रकार से हे प्रभु! मैंने, अगणित कीने हैं अपराध।
हों अपराध क्षमा सब मेरे, सादर झुका रहा हूँ माथ।।
हे प्रभु ! अब मैं कुछ ना चाहूँ, देव-शास्त्र-गुरु-शरण मिले।
जिन-दर्शन से निज-दर्शन हो, उर में समकित-सुमन खिले।।

आप ही हो आदर्श हमारे, तव पथ पर चलना चाहूँ।
दोषों का प्रक्षालन करके, तुम-सम ही बनना चाहूँ।।

पर का मैं क्यों कुछ करूँ ? क्या मैं हूँ मजदूर।
पर मेरा कुछ क्यों करे ? क्या मैं हूँ मजबूर।।
न तो मैं मजदूर हूँ, न मैं हूँ मजबूर।
गुण अनंत मजबूत मैं, सब चिन्तायें दूर।।
निज मजबूती जानकर, पर की चिन्ता छोड़।
पर से रिश्ता तोड़कर, निज से नाता जोड़।।
जब तक पर से आस है, बना रहूँगा दास।
निज वैभव में रमण कर, छोड़ूँ पर की आस।।
जो निज में ही रम गया, जग से हुआ उदास।
मिटा भ्रमण संसार का, रहे सिद्धों के पास।।

आतमराम आतमराम, ज्ञाता दृष्टा आतमराम

नर-नारी या मनुष्य नहीं हूँ, बाल-युवा मैं वृद्ध नहीं हूँ,
गोरा-काला रूप नहीं है, निर्धन या समृद्ध नहीं हूँ।
अरस-अरूपी आतमराम, ज्ञाता दृष्टा आतमराम।।1।।
रागी-द्वेषी-क्रोधी नहीं हूँ, मानी-छलिया-लोभी नहीं हूँ,
पर का कर्ता-धर्ता नहीं हूँ, जन्म नहीं मैं मरता नहीं हूँ।
मात्र जानना मेरा काम, ज्ञाता दृष्टा आतमराम।।2।।
संयोगों से भिन्न सदा मैं, कर्म मध्य पर कर्म रहित हूँ,
देह में रह भी देह नहीं हूँ, राग है पर मैं रागी नहीं हूँ।
ज्ञायक भाव सदा अभिराम, ज्ञाता दृष्टा आतमराम।।3।।

जिनवाणी स्तुति

('वीर' छंद)

शुभ्र ज्योत्सनावत् जिनवाणी, शीतल शान्ति प्रदाता है।
भविजन को शिशु सम कर पोषित, कहलाती जगमाता है।।
अनेकान्तमय वस्तु प्रकाशक, मोहतिमिर की नाशक है।
सप्त तत्त्व, षट् द्रव्य बताकर, दर्शाती निज ज्ञायक है।।
स्याद्वाद मय जिनवचनों से, मिटता भव का क्रन्दन है।
स्व-पर प्रकाशक जिनवाणी को, सादर मेरा वन्दन है।।

हर्षित होकर दान दो, होवे पुण्य महान।
वह देना नहीं दान है, जिसमें खींचातान।।

महाभाग्य

('वीर' छंद)

समझाया बहुतों ने बेटा! समझ जाओ तज नादानी।
चलो सत्य के पंथ वत्स तुम, करो नहीं अब मनमानी।।
विषय-भोग को विषधर जानो, इनसे न तुम प्रीति करो।
धन-पद के मत पीछे भागो, जिन दर्शन, स्वाध्याय करो।।
सुन-सुन कर उपदेश सभी के, कान पक गये यह माना।
उपदेशों में मेरा हित है, कभी नहीं मैंने जाना।।
यौवन की मदमाती वय में, चाल चली मैं मस्तानी।
सभी हितंकर बैरी लगते, एक नहीं उनकी मानी।।

विषय-व्यसन के पाश में फंसकर, जीवन जर्जर कर डाला।
निज-पर हित हेतु था यह जीवन, भोगों में ही धो डाला।।
पापोदय में पाप किये मैं, पुण्यभाव से दूर रहा।
पुण्योदय में अहंकार कर, कर्तापन में मस्त रहा।।
महाभाग्य मेरा जागा जो, वीतराग वाणी भायी।
देह छूटने से पहले ही, मुझको मेरी सुधि आयी।।
भूलों पर रोने से तो अब, गया समय न आयेगा।
सावधान यदि नहीं हुआ तो, शेष व्यर्थ ही जायेगा।।
बहुत गई पर थोड़ी जो है, उसका मैं उपयोग करूँ।
तन-चेतन को भिन्न जानकर, निज आतम में रमण करूँ।।

मात-पिता गुरु हैं उपकारी, आज समझ में आया है।
सत्य पंथ दर्शक जो भी हैं, उनको शीश नवाया है।।

आकुलता का है क्या काम ?

('वीर' छंद)

हंसना-रोना-उठना-गिरना, लाभ-हानि, जीना-मरना।
यश-अपयश, अरु रोग-निरोगी, जीवन में कब क्या करना ?
जो, जिसका, जब, जिस निमित्त से, जिस विधि प्रभु ने है जाना।
परिवर्तन ना कोई कर सके, ज्ञानी वह जिसने माना।।
कोई बिगाड़े कोई बनाये, यही मान्यता है अज्ञान।
निज-पर को जो कर्ता माने, वह अपने से है अनजान।।

कर्ताभाव तजो हे बंधु! ज्ञाता भाव करो स्वीकार।
है परिणमन स्वतंत्र सभी का, नहीं किसी की जीत ना हार।।
ज्ञान-दर्श-सुख गुण अनंतमय, अरस-अरूपी चेतन राम।
निर्भय अरु निर्भार रहें हम, आकुलता का है क्या काम?

संत स्वभाव निराला

('वीर' छंद)

नाना वस्त्राभूषण धरकर, भी हमने दुःख पाये हैं।
नग्न दिगम्बर संत हमारे, देखो सुख में नहाये हैं।।
बार-बार हम भोजन करते, तो भी तृप्त नहीं होते।
नीरस-सरस, मिले न मिले, मुनिवर व्यग्र नहीं होते।।

हम रहते हैं ए.सी. में पर, विषय-कषायों से हैं तप्त।
मुनिवर रहते वन-जंगल में, निजानंद में रहते मस्त।।
मान-प्रतिष्ठा अरु धन-पद के पीछे हैं हम भाग रहे।
मुनिवर तो इन सबको तजकर, बस निज में ही जाग रहे।।
निज वैभव को भूल स्वयं हम, जड़ वैभव पाना चाहें।
धन्य-धन्य गुरुराज हमारे, जड़ तज चिद् वैभव पायें।।
मात-पिता अरु भाई बन्धु, पत्नी पुत्र लगे परिवार।
गुरुवर उनसे मोह तजा है, गुण अनंत जिनका परिवार।।
हम कहते सर्दी-गर्मी में, क्या करते मुनि बेचारे ?
मुनिवर तो निज वैभव भोगें, भोगी लगते बेचारे।।

बाहर का है माल खजाना, भीतर से हैं हम कंगाल।
यतिवर के है पास न तिल तुष, फिर भी वे हैं मालामाल।।
जड़ दृष्टि को छोड़ो भाई, चेतन से नाता जोड़ो।
विषय-कषायों में न सुख है, इनसे अब मुँह को मोड़ो।।
है स्वाधीन सहज अरु सुखमय, मुनिराजों का ही जीवन।
उनको निज आदर्श बनाओ, विषयों में फिर लगे न मन।।
देते हैं संदेश मौन रह, हो जाओ भव्यो! स्वाधीन।
सुख-शांति वे कभी न पाते, जो रहते पर के आधीन।।
किया 'समर्पण' दर्श-ज्ञान का, जैसे निज में मुनिवर ने।
वंदना करके उन मुनिवर को, मैं भी रम जाऊँ निज में।।

ज्ञान स्वभाव निराला

('वीर' छंद)

दर्पण में दर्पण दिखता है, नहीं होता वह बिम्बाकार।
नाना रूप दिखें दर्पण में, वे सब दर्पण के आकार।।
त्यों ज्ञायक में ज्ञेय झलकते, पर रहता वह ज्ञानाकार।
ज्ञेयाकार उन्हीं को कहना, यह कहलाता है व्यवहार।।
दर्पण में दर्पण ही देखे, नहीं देखता जो प्रतिबिम्ब।
प्रतिबिम्बों में दर्पण ही है, बाहर ही रहता है बिम्ब।।
ज्ञान-ज्ञेय को भिन्न मानकर, सुखी रहें वे ज्ञानी हैं।
ज्ञेयाश्रित जो निज को माने, वे मानी अज्ञानी हैं।।

ज्ञान न ज्ञेयों में जाता है, ज्ञेय स्वयं में नहीं आते।
ज्ञान की निर्मलता है ऐसी, ज्यों के त्यों वे झलकाते।।
ज्ञायक को ही ज्ञेय बनाओ, और बनाओ तुम श्रद्धेय।
ज्ञेयों की चिन्ता से बस हो, ज्ञायक ही है मेरा ध्येय।।
करो 'समर्पण' निज का निज में, नहीं रहोगे तुम अल्पज्ञ।
ज्ञेयों पर से दृष्टि हटाकर, आत्मज्ञ होते सर्वज्ञ।।

देख प्रदर्शन और का, धन खर्चे मनमान।
नाम धर्म का दे रहे, चाहत हैं सन्मान।।
देखें नहीं उपयोगिता, मिले नाम वहीं दान।
संस्था खावे ब्याज फिर, अधिकारी मनमान।।

समर्पण का मासिक प्रकाशन संस्कार सुधा
संस्कार सुधा
संस्कार सुधा
संस्कार सुधा
संस्कार सुधा
संस्कार सुधा
बाबू श्री जुगल किशोर जी जैन 'युगल'

तीर्थधाम सिद्धायतन
द्रोणगिरि